पेशेवर शिक्षक होने के मायने

– डॉ. केवलानन्द काण्डपाल

कोठारी आयोग (1964–66) का बहुचर्चित प्रतिवेदन इस वाक्य से प्रारम्भ होता है कि भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है (The destiny of India is now being shaped in the class room) इसके गंभीर शैक्षिक निहितार्थ हैं। इसी प्रकार नई शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि शिक्षक का स्तर समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक लोकाचार का प्रतिबिम्ब है। यह कहा जा सकता है कि कोई भी समाज अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं जा सकता। (The status of the teacher reflects the socio-cultural ethos of the society; it is said that no people can rise above the level of its teachers) विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) ने अभिमत दिया था कि 'हमारे देश के लोग इस बात को मान्यता देने में बहुत धीमे रहे है कि शिक्षण एक व्यवसाय है जिसके लिए अन्य पेशों की तरह गहन तैयारी की आवश्यकता है।'

शिक्षक की तैयारी के क्रम में अन्य विषयक्रमों के अलावा निम्नांकित तीन क्षेत्रों में गहन विमर्श की अपेक्षा की जाती है–

1. शिक्षा के दार्शनिक आधार – इसके अंतर्गत शिक्षा के आदर्शों एवं उद्देश्यों का निरूपण किया जाता है। यह एक अलग बहस का मुद्दा हो सकता है कि शिक्षा के आदर्शों एवं उद्देश्यों के निर्धारण में अध्यापक की कोई भूमिका है अथवा तथा इस संदर्भ में उसे कितनी स्वायत्तता प्राप्त है।

2. शिक्षा के सामाजिक आधार – पाठ्यचर्या के निर्धारण हेतु आवश्यक है कि उस समाज के आधारभूत कारकों एवं घटकों की जांच पड़ताल करने का हुनर अध्यापक में विकसित किया जाय। अन्ततः बच्चे को समाज की मुख्यधारा में ही शामिल होना है तथा समाज में अपनी भूमिका का निर्वहन करना है। यहां पर पुनः विमर्श का बिन्दु उभरता है कि पाठ्यचर्या के निर्धारण में क्या शिक्षक की कोई भूमिका है? अगर देखें तो भारतीय संदर्भों में यह भूमिका अव्वल तो है ही नहीं या फिर मात्र प्रतीकात्मक है।

3. शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार – शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बच्चे की आवश्यकता के अनुरूप संचालित करने के लिए

आवश्यक है कि बच्चे की रुचियों, अभिरुचियों, सीखने के तौर–तरीकों के बारे में पता लगाने का कौशल शिक्षक के पास जरूर होना चाहिए। बच्चे के मन को समझना किसी भी पेशेवर शिक्षक के लिए आधारभूत कारक है। इसी मंतव्य से इसे शिक्षक शिक्षा का महत्वपूर्ण अवयव भी माना जाता है। इसकी मजबूत नींव शिक्षक को अपनी अकादमिक स्वायत्तता का बेहतरीन उपयोग करने में सहायक होती है।

वर्तमान भारतीय संदर्भ में उक्त तथ्यों के आलोक में हमारे मन में शिक्षक के बारे में जो प्रश्नात्मक अवधारणाएं उभरती हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हो सकती है–

1. क्या अध्यापक एक पेशेवर है? जिसका लक्ष्य समाज को उपयोगी सेवाएं देना है जिससे समाज प्रगति की राह में आगे बढ़े या फिर मात्र सरकारी सेवक है?
2. क्या शिक्षक नियम, मैनुअल, आदेश एवं पुस्तक से बंधा पूर्णतया आदेशपालक व्यक्ति है?
3. क्या शिक्षक ऐसा व्यक्ति है, जिसे पाठशाला या शिक्षा के नियोजन के मामले में कोई स्वतंत्रता नहीं है, लेकिन उसे जो करने को कहा जाय वह उसे क्रियान्वित करने लायक पर्याप्त ज्ञान एवं कौशल रखता है?
4. क्या शिक्षक शैक्षणिक विचार, विषयवस्तु और अर्थपूर्ण शिक्षा को स्वतंत्र रूप से निभाने के व्यावहारिक कौशलों से युक्त, शिक्षा का दृष्टा है?

5. क्या शिक्षक एक छोटा–मोटा मिस्त्री है या दूसरे शब्दों में कहें तो किसी दूसरे के अभिकल्पित शैक्षणिक भवन में ईंटें चिनने वाला है अथवा इस भवन की रचना में सहयोगी वास्तुकार है?

उक्त अवधारणायें हमारे मन–मस्तिष्क में एक समग्र प्रभाव उत्पन्न करती हैं जिसमें हम शिक्षक को एक चिन्तनशील, नवाचारी एवं स्वायत्त कार्मिक के रूप में देखते हैं। इससे हमारे समक्ष एक पेशेवर के रूप में उसकी छवि उभरती है जो न केवल अपने पेशे की दृष्टि से आवश्यक ज्ञान तथा कौशल रखता है बल्कि अपनी पेशेवर प्रगति के लिए सतत प्रयत्नशील है। साथ ही इस हेतु अपनी स्वायत्तता का उपयोग करने में भी सक्षम है।

अब हम प्रथम प्रश्न का विश्लेषण करने का प्रयास करते है। मानव सभ्यता के तीव्र विकास ने वर्तमान समय में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न देशों को परस्पर निर्भर बना दिया है। हम वैश्वीकरण के युग में हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विकास एवं प्रतिस्पर्द्धा साथ–साथ चलती है। आज हम देखते हैं कि शिक्षा का भी वैश्वीकरण हुआ है। आज हमारे देश को तीव्र, गतिशील एवं परिवर्तनशील भौतिक, आर्थिक व सामाजिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाना आवश्यक हो गया है। देश की भावी पीढ़ी को वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाने हेतु सामाजिक परिवर्तन के एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका एवं महत्व पहले से अधिक बढ़ गया है। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1996) ने शिक्षा के चार स्तम्भों की अवधारणा दी है जिसमें ज्ञान के लिए शिक्षा, कार्य के लिए शिक्षा, सर्व–अस्तित्व के लिए शिक्षा एवं स्व–अस्तित्व के लिए शिक्षा की बात कही गयी है, जो पेशेवर शिक्षक के लिए पर्याप्त संदर्भ दृष्टि प्रदान करती है। वर्तमान वैश्विक प्ररिप्रेक्ष्य में शिक्षण व्यवसाय को पेशे की मान्यता दी जाने लगी है। परंतु, भारतीय संदर्भ में इसके बारे में एक अंतहीन बहस की गुंजाइश अभी भी बनी हुई है कि क्या शिक्षण कार्य को एक पेशे के रूप में माना जा सकता है? थोड़ा बहुत जोखिम उठाकर हम यह कह सकते हैं कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक के कार्य अर्थात शिक्षण व्यवसाय को पेशे के रूप में स्वीकार करने एवं व्यवहार के रूप में लाने की आवश्यकता है, शिक्षण कार्य को पेशे के ढांचे में परीक्षित करने के लिए आवश्यक है कि पेशे के मूलभूत तत्वों की जांच–परख की जाए। शिक्षण व्यवसाय को पेशे की कसौटी में परखा जाय। कोई भी कार्य पेशा है या नही, इसकी कसौटी हेतु सामान्य तथा निम्न मूलभूत तत्वों की विद्यमानता आवश्यक मानी गयी है–

1. खास पेशे हेतु आवश्यक शैक्षिक एवं तकनीकी ज्ञान एवं प्रशिक्षण प्राप्त करना।
2. प्राप्त शैक्षिक एवं तकनीकी ज्ञान एवं कौशलों का सामान्य जनहित की आवश्यकता पूर्ति हेतु उपयोग करके आजीविका निर्वहन।
3. पेशे से संबंधित ज्ञान, कौशल एवं दक्षता हेतु सतत तैयारी एवं व्यावसायिक विकास।
4. सामान्य जन की आवश्यकता पूर्ति के क्रम में पेशेवर द्वारा सेवा–तत्व को, लाभ–तत्व के ऊपर प्राथमिकता देना अर्थात सेवा को प्रथम, लाभ को द्वितीय प्राथमिकता।
5. सतत व्यावसायिक विकास हेतु व्यापक अभिप्रेरणात्मक ढांचे की विद्यमानता तथा अभिप्रेरक घटकों की उपलब्धता।
6. पेशेवर एवं हितग्राहक के मध्य पेशेवर एवं नैतिक विनियमों का अनुपालन अर्थात पेशे हेतु उपयुक्त मूल्य आधारित व्यवस्था।
7. पेशेवर द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की बेहतर गुणवत्ता हेतु पेशेवर को प्राप्त स्वायत्तता। शिक्षक के पेशे को उपरोक्त कसौटियों के आलोक में बिन्दुवार समझने की आवश्यकता है।

शिक्षकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की वर्तमान व्यवस्था – यद्यपि 1960 के दशक से ही शिक्षकों की पेशेवर तैयारी को आवश्यक माना जाता रहा है लेकिन इसका वर्तमान जमीनी यथार्थ बहुत आशाजनक नहीं है। कोठारी आयोग (1964–66) ने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षक शिक्षा को अकादमिक जीवन की मुख्य धारा से जोड़ा जाना चाहिये लेकिन शिक्षक शिक्षण/ प्रशिक्षण संस्थाएं अभी तक अपने पारम्परिक दायरे से बाहर नहीं निकल पायीं हैं।

चट्टोपाध्याय समिति ने यह सिफारिश की थी कि माध्यमिक स्तर पर शिक्षक बनने के लिए बारहवीं कक्षा के बाद शिक्षण–प्रशिक्षण की अवधि पांच वर्ष होनी चाहिए। इसी समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि विज्ञान एवं कला संबंधी कालेजों में एक शिक्षा विभाग की भी स्थापना होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी शिक्षक–शिक्षा के विषय को भी पढ़ सके परन्तु यहां पर भी निराशाजनक रूप से यह उल्लेखनीय है कि इस दिशा में बहुत ही क्षीण प्रयास हुए हैं और वह भी तदर्थ रूप में। वर्ष 1993 में यशपाल समिति के प्रतिवेदन 'शिक्षा बिना बोझ के' में सिफारिश की गयी कि 'इन कार्यक्रमों (शिक्षण प्रशिक्षण) में जोर इस बात पर हो कि प्रशिक्षुओं के स्वअधिगम और स्वतंत्र चिन्तन का विकास हो सके।'

शिक्षक की भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले सहायक की होनी चाहिए, जो विविध उपायों से सूचना को ज्ञान/बोध में बदलने की प्रक्रिया में मदद करे।

राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा 2005 में कहा गया है कि 'वर्तमान शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों को एक ऐसी व्यवस्था में समायोजित करने के लिए प्रशिक्षण देता है जिसमें शिक्षा के बारे में यह समझा जाता है कि उसमें केवल सूचनाओं का प्रसार होता है। पाठ्यचर्या सुधारों के प्रयासों को शिक्षक प्रशिक्षण का पर्याप्त समर्थन नहीं मिल पा रहा है। बड़े पैमाने पर पैरा शिक्षकों की बहाली से शिक्षकों की पेशेवर पहचान प्रभावित हुई है।' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, पृष्ठ 120)

राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा 2005 की अनुशंसा में शिक्षक शिक्षा–कार्यक्रमों में निम्न बदलाव सुझाये गये हैं–

- शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं की समझ को प्राथमिकता देने की जरूरत है। शिक्षार्थी को शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार के रूप में देखना चाहिए न कि निष्क्रिय ग्रहणकर्ता के रूप में तथा ज्ञान को पूर्व निर्धारित न मानकर प्रत्यक्ष स्व–अनुभवों से निर्मित माना जाना चाहिए। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया इस प्रकार व्यवस्थित की जाए कि विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अवलोकन के अवसर मिलें, शिक्षार्थियों के प्रश्नों को प्राकृतिक एवं सामाजिक घटनाओं के अवलोकन में मदद करने वाले कार्य मिल सकें। बच्चों में चिन्तन संबंधी अन्तर्दृष्टि विकसित हो और बच्चों की बातें ध्यान एवं सहानुभूति के साथ सुनने के अवसर मिलें।
- अधिगम को सहभागिता की उस प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए जो सह–पाठियों और वृहत सामाजिक समुदाय या पूरे राष्ट्र के समाजिक संदर्भों के बीच होती है। अधिगम एक स्वानुभव आधारित प्रक्रिया है जिसमें शिक्षार्थी अपने ज्ञान का निर्माण अपने तरीके से आत्मसात् करते हुए अन्तःक्रिया, अवलोकन तथा मनन–चिन्तन द्वारा करते हैं।
- शिक्षक की भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले सहायक की होनी चाहिए, जो विविध उपायों से सूचना को ज्ञान/बोध में बदलने की प्रक्रिया में मदद करे।
- ज्ञान को एक सतत् प्रक्रिया माना जाना चाहिए जो वास्तविक अनुभवों के अवलोकन, पुष्टिकरण आदि से उत्पन्न होता है।
- शिक्षक प्रशिक्षण में अवधारणात्मक निवेशों को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि वे शैक्षिक घटनाओं जैसे – अवधारणा, प्रयोग, क्रिया, अधिगम, प्रक्रिया और घटनाओं का वर्णन, विश्लेषण करें।
- शिक्षक प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक समझ और उसके व्यावहारिक प्रयोगों को समन्वित रूप से देखने के लिये पर्याप्त मौके दिए जाने की जरूरत है न कि उनको अलग–अलग पहलुओं के रूप में देखने की। अध्यापक को कक्षा में क्षेत्र आधारित पद्धतियों के प्रति आलोचनात्मक संवेदना विकसित करने की जरूरत है।

हम शिक्षक को एक चिन्तनशील, नवाचारी एवं स्वायत्त कार्मिक के रूप में देखते हैं। इससे हमारे समक्ष एक पेशेवर के रूप में उसकी छवि उभरती है जो न केवल अपने पेशे की दृष्टि से आवश्यक ज्ञान तथा कौशल रखता है बल्कि अपनी पेशेवर प्रगति के लिए सतत प्रयत्नशील है।

- शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में समकालीन भारतीय समाज के मुद्दों और चिन्ताओं, उसके बहुलतावादी स्वभाव और पहचान, लिंग, समता, जीविका और गरीबी के मुददों के लिए स्थान होना चाहिए। इससे शिक्षकों में शिक्षा को उसके सामाजिक संदर्भों में रखने, उसके उद्देश्य और समाज के साथ उसके संबंधों की समझ गहरी होगी।

उक्त सभी संदर्भ यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं कि शिक्षक को शैक्षणिक विचार, विषयवस्तु और अर्थपूर्ण शिक्षा को स्वतंत्र रूप से निभाने के व्यावहारिक कौशल से युक्त दृष्टा होना चाहिए। वस्तुतः शिक्षण व्यवसाय को पेशेवर की प्रतिष्ठा देने के लिए आवश्यक है कि इस व्यवसाय में वही व्यक्ति शामिल हो जिसने इस व्यवसाय को चुना है न कि संयोगवश इस पेशे में है। अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009 ने इस संदर्भ में शिक्षक – शिक्षा पाठ्यचर्या में बदलाव की पहल की है। प्रारम्भिक शिक्षक की पाठ्यचर्या में सुधार हेतु राज्यों को निर्देशित भी किया गया है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने प्रारम्भिक शिक्षा की शिक्षा संबंधी पाठ्यचर्या के बहुपरतीपन को दूर करके समान डी.एल.एड. /डी.एड. पाठ्यचर्या की अनुशंसा की है। निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का संदर्भ तो इस मामले में महत्वपूर्ण है ही। इधर हाल के वर्षों में शिक्षक पात्रता परीक्षा के आयोजन से यह आशा बलवती होती है कि शिक्षण व्यवसाय में अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति इसमें शामिल हो सकेंगे। शिक्षक के पेशेवर नजरिये के लिए शिक्षक – शिक्षा की पाठ्यचर्या में बदलाव की आवश्यकता है।

शिक्षण पेशे हेतु उपयुक्त मूल्य व्यवस्था – किसी भी अन्य पेशे के समान पेशेवर शिक्षक हेतु एक उपयुक्त मूल्य आधारित व्यवस्था की आवश्यकता है। यद्यपि सरकारी तंत्र में इसकी स्पष्टता का अभाव दिखलायी देता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 इसका स्पष्ट दर्शन उपलब्ध कराती है। इसके अनुसार –

(क) शिक्षकों को ऐसी तैयारी करने की जरूरत है कि वे बच्चों का ख्याल रख सकें और उनके साथ रहना पसंद करें।

(ख) सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सकें।

(ग) ग्रहणशील एवं निरन्तर सीखने वाले हों।

(घ) शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों की सार्थकता की खोज के रूप में देखें तथा ज्ञान निर्माण को मननशील अधिगम की लगातार उभरती प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करें।

(ड) ज्ञान को पाठ्य पुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।

(च) समाज के प्रति अपना दायित्व समझें और बेहतर विश्व के लिए काम करें।

(छ) उत्पादक कार्य के महत्व को समझें तथा कक्षा के अंदर एवं बाहर व्यावहारिक अनुभव देने के लिए कार्य को शिक्षण का माध्यम बनाएं।

यहां पर उल्लेखनीय है कि मूल्य आधारित व्यवस्था के विकास हेतु सामुदायिक चेतना एवं जागरूकता को उन्नत होना चाहिए। अध्यापक नियम, मैनुअल, पुस्तक से बंधा पूर्णतः आदेशपालक कार्मिक बनकर न रह जाए, इसके लिए उसे पेशेवर दृष्टिकोण विकसित करके अपने लिए एक संहिता विकसित करनी होगी जो कर्मचारी संहिता से इतर कुछ मायनों में उससे भी श्रेष्ठ दार्शनिक मूल्य रखती हो। इसके अनुपालन हेतु किसी भी प्रकार की शासकीय शास्ति के बजाय स्व–अनुपालन की प्रतिबद्धता आवश्यक होगी।

शिक्षक की स्वायत्तता एवं पेशेवर स्वतंत्रता – शैक्षणिक वातावरण निर्माण के लिए शिक्षक की स्वायत्तता एक मूलभूत शर्त है। शिक्षक बच्चों की विविधतापूर्ण आवश्यकताओं को संबोधित करते समय इस स्वायत्तता का बेहतर उपयोग कर सकें, इसके लिए शिक्षक को समुचित स्वतंत्रता की भी आवश्यकता होगी। जितनी आजादी, इज्जत और लचीलापन

शिक्षार्थी को चाहिए उसके समानुपातिक शिक्षक को भी यह सब चाहिए। वर्तमान में प्रशासनिक ऊंच–नीच एवं नियंत्रण, परीक्षाएं, पाठ्यचर्या सुधार का केन्द्रीकृत नियोजन ये सभी शिक्षक की स्वायत्तता पर अनेक प्रतिबंध लगाते हैं। कहीं पाठ्यचर्या में खुलेपन का अवसर मिलता भी है तो भी शिक्षक इतने आत्मविश्वासी नहीं हो पाते कि वे अपनी स्वायत्तता का ऐसे उपयोग कर लें कि प्रशासन भी अलग तरह से काम करने के कारण खफा न हों। स्वायत्तता के साथ समानुपातिक जवाबदेही भी संलग्न होती है।

जहां कक्षा में एक लोकतांत्रिक, नम्य और स्वीकृति देने वाली संस्कृति को पोषण देने की जरूरत है, वहीं स्कूल की संस्था और कार्यालयी संरचनाओं द्वारा भी ऐसी ही संस्कृति को बढ़ावा देने की जरूरत महसूस होती है। इसलिए यह जरूरी है कि शिक्षक को विकल्प चुनने में और स्वायत्तता को महसूस करने में समर्थन दिया जाय।

शिक्षक न केवल आदेश एवं सूचनाएं वे प्राप्त करें वरन उच्च स्तर पर निर्णय लेते समय शिक्षकों की आवाजें भी सुनी जाएं, जिनसे कक्षा का तात्कालिक जीवन और स्कूल की संस्कृति प्रभावित होती है। शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों, शिक्षकों एवं प्रशासकों के आपसी रिश्ते समानता एवं पारस्परिक सम्मान पर आधारित होने चाहिए और विद्यालयों के बारे में निर्णय बातचीत एवं चर्चा करके लिए जाने चाहिए। गतिविधियों के वार्षिक, मासिक एवं साप्ताहिक कैलण्डर/कार्य योजना में समीक्षा और योजना के लिए शिक्षकों के पारस्परिक संपर्क/संवाद की व्यवस्था होनी चाहिए। एक ऐसे वातावरण के विकास की जरूरत है जिसमें शिक्षकों में मिलजुल कर काम करने की भावना का विकास हो, साथ ही विवादों के निपटारे का लोकतांत्रिक तरीका भी अमल में लाया जाय। शिक्षक संघों के माध्यम से मामलों का निपटारा बहुत लाभदायक सिद्ध नहीं हो रहा है। उदाहरण के लिए टी.वी., कम्प्यूटर आदि तकनीकों को शिक्षकों की कक्षा में पहुंचा दिया जाता है, बिना उनसे पूछ कि उनकी जरूरत है भी कि नहीं और वे किस प्रकार इनका प्रयोग करना चाहते हैं। एक बार उपकरण लग जाने पर उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे इसका प्रयोग करें, इस बात पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता कि उससे क्या प्रसारित होगा या उनकी अपनी शिक्षण योजनाओं से वह किस प्रकार जुड़ पाएगा। यदि गहनता से विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में अध्यापक की स्वायत्तता के कुछ महत्वपूर्ण सूत्र दिखलाई पड़ते हैं। इस अधिनियम की धारा 24 (1) में अध्यापक के कार्य दायित्वों को विहित किया गया है। इसके अनुसार एक अध्यापक के निम्नलिखित कार्यदायित्व/कर्तव्य हैं–

(क) विद्यालय में उपस्थित होने में नियमितता एवं समय पालन।

(ख) धारा 29 की उपधारा (2) के उपबंधों के अनुसार पाठ्यक्रम संचालित करना और उसे पूरा करना।

(ग) विनिर्दिष्ट समय के भीतर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पूरा करना।

(घ) प्रत्येक बालक की शिक्षा ग्रहण करने की सामर्थ्य का निर्धारण करना और तद्नुसार यथा अपेक्षित अतिरिक्त शिक्षण यदि कोई हो करना।

(ड) माता–पिता और संरक्षकों के साथ नियमित बैठकें करना और बालक के बारे में उपस्थिति में नियमितता, शिक्षा ग्रहण करने का सामर्थ्य, शिक्षण में की गयी प्रगति और किसी अन्य सुसंगत जानकारी के बारे में उन्हें अवगत कराना और

(च) ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करना जो विहित किया जाय।

धारा 29 (2) शिक्षा प्राधिकारी, उपधारा (1) के अधीन पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया अभिकथित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखेगा अर्थात –

(क) संविधान में प्रतिस्थापित मूल्यों से समनुरूपता।

(ख) बालक का सर्वांगीण विकास करना।

(ग) बालक के ज्ञान, अंतःशक्ति, योग्यता का निर्माण करना।

(घ) पूर्ण मात्रा तक शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं का विकास करना।

(ड) बाल अनुकूल और बाल केन्द्रित रीति में क्रियाकलापों, प्रकटीकरण एवं खोज के द्वारा शिक्षण।

(च) शिक्षा का माध्यम जहां तक साध्य (संभव) हो बालक की मातृभाषा करना।

(छ) बालक को भय, मानसिक अभिघात और चिन्तामुक्त बनाना और बालक को स्वतंत्र रूप से मत व्यक्त करने में सहायता करना।

(ज) बालक के समझने की शक्ति और उसके उपयोग करने की उसकी योग्यता का व्यापक और सतत् मूल्यांकन।

अध्यापक के उक्त कार्यदायित्वों के आलोक में विश्लेषण किया जाय तो हम देख पाते हैं कि कतिपय ऐसे क्षेत्र हैं जहां शिक्षक स्वायत्तता का उपयोग कर सकता है जैसे–

1. पाठ्यचर्या का संचालन।
2. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन।
3. अनुपूरक शिक्षण/निर्देशन।
4. अभिभावक/संरक्षकों से परामर्श।
5. बच्चे के अधिगम स्तर का आकलन/निर्धारण।
6. बच्चे के अधिगम स्तर के अनुरूप उसकी विशेषीकृत आवश्यकताओं के संदर्भ में शिक्षण अधिगम गतिविधियों का निर्धारण।

अनुदेशन के माध्यम के रूप में बच्चे की मातृभाषा को शिक्षण अधिगम का माध्यम बनाना।

एक पूर्व निर्धारित एवं बंधे बंधाए ढर्रे में काम करना अपेक्षाकृत संरक्षित एवं सुविधाजनक रहता है। अतः शिक्षक स्वायत्तता की चुनौती स्वीकार करने में अपनी झिझक से नहीं निकल पाते हैं। इसके लिए आवश्यक साहस का सृजन करने में शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या प्रायः असफल हो रही है। प्रशासनिक एवं व्यवस्थागत ढांचे की पाबन्दियां तो हैं ही। शिक्षण पेशे में कुछ नया कर गुजरने के लिए कुछ जोखिम तो उठाना ही पड़ेगा। शिक्षक मात्र एक ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे पाठशाला या शिक्षा के मामलें में कोई स्वतंत्रता नहीं है लेकिन उसे जो कुछ करने को कहा जाए वह क्रियान्वित कर पाने लायक पर्याप्त ज्ञान एवं कौशल रखता है वरन् वह एक ऐसा पेशेवर बन सकता है जो अपने लिए स्वायत्तता की राह खोजता है, कुछ नया कर गुजरता है और जवाबदेही को भी स्वीकार करता है। स्वायत्तता ऐसी चीज नहीं है कि यह किसी शासकीय नियम, कानून या आदेश के तहत स्वतः ही प्राप्त हो जाए परन्तु इतना निश्चित है कि यदि शिक्षक कुछ नया कर गुजरने की ख्वाहिश रखते हैं, नवाचारी कहलाना पसंद करते हैं तथा शिक्षण को पेशे के रुप में देखते हैं तो शिक्षक को स्वायत्तता के क्षेत्र में आगे बढ़ना ही होगा। इसके लिए शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या में व्यापक बदलाव करने की आवश्यकता होगी, जिसमें शिक्षकों को तैयारी के समय से ही स्वायत्तता के व्यावहारिक अनुभव दिए जाएं तथा शिक्षकों में इसके लिए आवश्यक कौशल एवं दक्षताएं विकसित की जा सकें। अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2009 भी शिक्षक को चिंतनशील अभ्यासकर्ता के रूप में परिलक्षित करती है।

शिक्षक पेशे की निरंतर बदलती आवश्यकताओं के अनुरुप सतत् व्यावसायिक विकास हेतु उपलब्ध ढांचा एवं प्रणाली :

व्यक्तिगत प्रयास – इसके अंतर्गत अध्यापक अपने पद के अनुरूप एवं पदोन्नति हेतु आवश्यक शैक्षिक एवं शिक्षण योग्यताओं को अर्जित करने का प्रयास करते हैं। इस क्रम में विश्वविद्यालयों, इग्नू या अन्य ओपन यूनिवर्सिटीज से व्यक्तिगत परीक्षा के द्वारा उपाधियां प्राप्त करना प्रमुखता से दृष्टिगत होते हैं। यह उपक्रम उनकी व्यावसायिक दक्षता को बढ़ाने में बहुत कारगर नहीं हो पा रहा है क्योंकि इन प्रयासों के मकसद भिन्न होते हैं। इतना ही नहीं यदि अध्यापक अपने व्यक्तिगत प्रयासों से कोई व्यावसायिक योग्यता अर्जित करना भी चाहें तो वर्तमान प्रणाली अध्यापक के सेवा दायित्वों के साथ सामंजस्य नहीं बैठा पाती, इसके अलावा शुल्क, अवकाश, अनुमति की बाधाएं भी असर डालती हैं।

प्रत्येक राज्य में सी.टी.ई. (कॉलेज ऑफ टीचर एजूकेशन) एवं आई.ए.एस.ई. (इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज इन एजूकेशन) संस्थाओं की परिकल्पना शिक्षक के पेशेवर विकास हेतु व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे बी.एड., एम.एड. पी.एच.डी. आदि पाठ्यक्रम की उपलब्धता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से की गई थी। इसमें मंशा यह थी कि शिक्षक को अपने पेशेवर दायित्वों के साथ–साथ अपने पेशेवर विकास हेतु विभिन्न पाठ्यक्रम/व्यावसायिक योग्यताओं को प्राप्त करने की लचीली

सुविधा प्राप्त हो जाए। परंतु परिदृश्य यह है कि कतिपय राज्यों में तो ये संस्थाएं फंक्शनल ही नहीं हैं। यदि कुछ राज्यों में काम कर भी रही हैं तो वहां शिक्षक के सतत् व्यावसायिक विकास के परिप्रेक्ष्य का अभाव दिखलायी पड़ता है। समग्र रुप में परिदृश्य बहुत आशाजनक नहीं है। अध्यापक कोई छोटा–मोटा मिस्त्री नहीं है न ही वह किसी दूसरे के अभिकल्पित शैक्षणिक भवन में ईंट चिनने वाला कारीगर मात्र बल्कि वह इस भवन की रचना में सहयोगी वास्तुकार है। पेशेवर दृष्टिकोण रखने वाले अध्यापक का एक विजन होता है, उस विजन के सापेक्ष एक कार्य योजना होती है, साथ ही उस कार्ययोजना के पालन के लिए (चाहे हालात कुछ भी क्यों न हों) कठोर प्रतिबद्धता होती है। उसका नजरिया प्रोफेशनल होता है तथा वह अपने प्रोफेशन के सतत विकास हेतु सचेष्ट रहता है।

सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण शिक्षकों के पेशेवर विकास एवं स्कूली गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इससे शिक्षक व्यावहारिक कार्यों के माध्यम से अपने अनुभवों को पक्का कर आत्मविश्वास अर्जित कर सकते हैं। इससे अन्य शिक्षकों से संपर्क एवं संवाद के अवसर मिलते हैं तथा पेशेवर ढंग से कार्य करने एवं ज्ञान में नयापन लाने के अवसर मिलते हैं। कोठारी आयोग ने सुझाव दिया है कि नौकरी के दौरान शिक्षकों के प्रशिक्षणों का आयोजन विश्वविद्यालयों एवं शिक्षकों के संगठनों द्वारा किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण संस्थानों को साल भर सेमिनार, कार्यशालाएं, रिफ्रेशर कोर्स, ग्रीष्मकालीन कोर्स आयोजित करने चाहिए। शिक्षकों पर राष्ट्रीय आयोग (चट्टोपाध्याय समिति 1983–85) ने शिक्षक केन्द्रों का विचार सामने रखा था, जो एक मिलन मंच हो, जहां शिक्षक इकट्ठे हों और अपने–अपने अनुभवों के साथ विचार विमर्श करें। इसमें सुझाव यह था कि शिक्षक, शिक्षावकाश में केन्द्रों की यात्रा पर जा सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने सेवा–पूर्व एवं सेवाकालीन शिक्षा को एक सतत् प्रक्रिया के रूप में माना। इसमें प्रत्येक जिले में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डायट) की स्थापना का सुझाव दिया गया तथा 250 महाविद्यालयों का दर्जा बढ़ाकर शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (कालेज ऑफ टीचर एंजुकेशन) एवं 50 उच्चशिक्षा अध्ययन संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ एडवान्स स्टडीज इन एजूकेशन) बनाने का सुझाव दिया। साथ ही राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों को मजबूत करने की बात कही गयी। आचार्य राममूर्ति समिति (1990) ने संस्तुति की कि रिफ्रेशर कोर्स आदि शिक्षकों की विशेष आवश्यकताओं से जोड़ दिए जायें और मूल्यांकन एवं फॉलोअप की गतिविधियां इस योजना का हिस्सा बनें।

समग्र रूप से सेवारत शिक्षक प्रशिक्षणों में निम्नांकित मूलभूत सुधार/बदलाव लाने की आवश्यकता है–

- जिन क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच बनाने के विचार से बहुश्रेणी स्कूल स्थापित किए गये (यद्यपि प्रत्येक श्रेणी में बहु स्तर विद्यमान हैं।) वहां शिक्षकों को ऐसी बहु–श्रेणी एवं बहु–स्तर कक्षा के प्रबन्धन का विशेष प्रशिक्षण आवश्यक है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक हम प्रत्येक कक्षा एवं प्रत्येक विषय हेतु विशेषज्ञ अध्यापक उपलब्ध नहीं करा पाते हैं। यह प्रशिक्षण उन संदर्भ व्यक्तियों द्वारा दिया जाना चाहिए जिन्हें ऐसी कक्षाओं के संगठन एवं प्रबन्धन का अनुभव एवं विशेषज्ञता दोनो हो। बिना किसी सुविधा के कक्षा प्रबन्धन कैसे हो ?
- इकाइयों या विषय वस्तु के नियोजन के बारे में बता देने से शिक्षकों को कोई विशेष लाभ नहीं हो पाता है। अधिकांश अध्यापकों का अभिमुखीकरण पूर्णतः एकल या दो शिक्षकों की श्रेणी के लिए होता है। केवल प्रशिक्षण कक्ष में बताने के बजाय विस्तृत पाठ योजना अभ्यास के साथ प्रत्यक्ष व्यावहारिक अनुभवों द्वारा यह अनुभव कराने की आवश्यकता है कि किस प्रकार ऐसे स्कूलों में शिक्षण अधिगम संचालित किया जा सकता है।
- नई शिक्षा नीति के तहत् प्रारिम्भक शिक्षकों की पेशेवर शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डायट), सी. टी.ई. (कालेज ऑफ टीचर एजुकेशन) एवं आई.ए.एस.ई. (इंस्टीट्यूट ऑफ एडवॉस स्टडीज इन ऐजुकेशन) आदि संस्थानों का गठन किया गया है। वर्तमान समय में भी इनमें से अधिकांश शिक्षकों की पेशेवर एवं शैक्षिक आवश्यकताओं को संबोधित केन्द्र अस्तित्व में आए जिनको शैक्षिक संदर्भों एवं अध्यापक की अकादमिक आवश्यकताओं के संसाधन केन्द्र के रूप में परिकल्पित किया गया था। इसके बाद सर्व शिक्षा अभियान के तहत सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण के प्रसार की नीति अपनायी गयी। विस्तृत प्रयासों के बावजूद भले ही इसके कुछ क्षेत्रों में सुधार हुआ हो, किन्तु सेवा कालीन शिक्षक प्रशिक्षण का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर कोई खास प्रभाव दिखलायी नहीं दिया। ये प्रशिक्षण, शिक्षक की

आवश्यकताओं को संबोधित करने में असफल रहे तथा कालान्तर में इस प्रकार के प्रशिक्षण महज रस्मी साबित हुए।

- सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता का एक बड़ा मानक यह है कि शिक्षक के लिए इसकी क्या प्रासंगिकता है? परन्तु सत्य यह है कि इस प्रकार के ज्यादातर कार्यक्रम शिक्षकों की वास्तविक जरूरतों को ध्यान में रखकर नहीं बनाए जाते। सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण से पूर्व शिक्षकों की शैक्षिक एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं के विश्लेषण का कोई संस्थागत एवं स्थायी ढांचा विद्यमान नहीं है। अधिकांश प्रशिक्षण कार्यक्रमों में व्याख्यान आधारित अधिगम प्रणाली अपनायी जाती है, जिसमें प्रतिभागियों के भागीदारी के बहुत कम अवसर रहते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि गतिविधि आधारित शिक्षण, बड़ी कक्षाओं का प्रबन्धन, बहुस्तरीय/बहुश्रेणी शिक्षण एवं सामूहिक शिक्षण जैसे विषय जिन्हें करके दिखाने की जरूरत है, उनको भी भाषणों/व्याख्यानों द्वारा पढ़ाया जाता है।
- सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण के अनुभवों को विद्यालयों में किस प्रकार लागू किया जा रहा है, इसके अनुवर्तन (फॉलोअप) की शुरूआत भी नहीं हो सकी है। संकुल स्तर की शिक्षकों की बैठकें शिक्षकों के पेशेवर मंचों के रूप में विकसित नहीं हो सकी हैं, जहां शिक्षक साथ बैठें, चिन्तन करें और साथ–साथ योजना बनाएं एवं चर्चा करें।
- सेवारत शिक्षक प्रशिक्षणों के अनुभवों को विद्यालय स्तर पर लागू करने हेतु पोषक वातावरण (Conducive Environment) नहीं मिल पाता है। अतः प्रशिक्षण गतिविधियों एवं कक्षा कक्ष में शिक्षक के व्यवहार में पर्याप्त अन्तर दिखलायी देता है।
- सेवाकालीन प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों का पर्याप्त अभिमुखीकरण हो और उनमें ऐसी क्षमता का विकास किया जाए चाहिए कि वे पाठ्यचर्या रूपरेखा की चुनौतियों को स्वीकारें, समझें तथा उनका सामना करें।
- सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण विशेष रूप से शिक्षकों के कक्षानुभवों के संदर्भ में होने चाहिए। प्रशिक्षण की अवधि को वर्ष भर में बांटा जा सकता है बजाय इसके कि इसे एक बार में ही किसी तरह निबटा लिया जाय। इस तरह शिक्षक के वर्ष भर के कार्यानुभवों को इसमें सम्मिलित किया जा सकेगा।
- सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षणों के मध्य की विलुप्त कड़ी को जोड़ने के लिए इंटर्नशिप को लागू किया जा सकता है। इससे विद्यार्थी–शिक्षकों को स्कूलों में कक्षा–कक्ष के काम काज का अवलोकन करने का अवसर मिलेगा तथा बाद में यह सेवारत प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों को आलोचनात्मक चिन्तन का आधार भी दे सकता है।

> अध्यापक कोई मिस्त्री नहीं है न ही वह किसी दूसरे के अभिकल्पित शैक्षणिक भवन में ईट चिनने वाला कारीगर मात्र बल्कि वह इस भवन की रचना में सहयोगी वास्तुकार है।

शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (NCFTE 2009) में शिक्षक शिक्षा को एक सातत्य के रूप में देखा गया है, सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा, सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण एवं सतत व्यावसायिक विकास हेतु सदैव तत्पर एवं सजग रहने की आवश्यकता है। वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी के युग में इंटरनेट पर इस तरह की बहुत सी जानकारियां उपलब्ध हैं, ऑनलाईन पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं, कतिपय समूह, संगठन, संस्थाएं विचारों का आदान–प्रदान कर रहीं हैं। शिक्षक अपने पेशे के प्रति जागरूक होने के साथ–साथ प्रयासरत भी हैं और इस दिशा में आगे बढ़ भी रहे हैं परन्तु यह एक सामान्य प्रैक्टिस का स्वरूप नहीं ले पाया है। शिक्षा ढांचे एवं प्रणाली में भी इस प्रकार के प्रावधान करने आवश्यक होंगे, जिससे शिक्षक अपने सतत व्यावसायिक विकास को न केवल गंभीरता से लें वरन् अपने पेशेगत चर्या का अभिन्न अंग बनाने का प्रयास भी करें।

- शिक्षकों में पेशेवर दृष्टिकोण विकसित करने के लिए उपयुक्त अभिप्रेरणात्मक प्रणाली (Motivational System) की व्यवस्था–पेशेवर दृष्टिकोण मूलतः अभिवृत्ति एवं मूल्य से जुड़ा मसला है। यह किसी भी ऐसे ढांचे में अभिप्रेरण के आधार पर पोषित एवं विकसित होता है, जहां अच्छे कार्य

को प्रोत्साहन मिले मान्यता मिले और उसे शेयर करने के अवसर मिलें। इसके अतिरिक्त अन्य घटक भी हैं, जो शिक्षक के अभिप्रेरण को प्रभावित करते हैं। मसलन–

- शिक्षक के करियर विकास की किसी स्पष्ट नीति का अभाव है। एक निर्धारित समय सीमा के बाद पदोन्नति शिक्षक को पेशेवर विकास हेतु अभिप्रेरित नहीं करतीं। शिक्षकों हेतु करियर अवार्ड/पदोन्नति की सुस्पष्ट नीति की आवश्यकता है।
- स्पष्ट एवं पारदर्शी स्थानान्तरण नीति न होने से भौगोलिक दृष्टि से विषम परिस्थितियों में कार्य करने वाले शिक्षक अपने सतत व्यावसायिक विकास के संदर्भ में नकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं। स्थिति तब अधिक जटिल हो जाती है जब दुर्गम या कम सुविधाजनक स्थानों पर लम्बे समय तक कार्य करना पडे जबकि दूसरी तरफ कुछ शिक्षक लम्बे समय तक सुगम एवं सुविधाजनक स्थानों पर कार्य कर रहे हों।
- पेशेवर एवं नवाचारी शिक्षकों को मान्यता देने का एक शिथिल प्रारूप राज्य/केन्द्र सरकारों द्वारा पुरस्कार इत्यादि की व्यवस्था है परन्तु इसकी पारदर्शिता एवं निष्पक्षता पर संदेह जताने वाले अध्यापकों की संख्या कम नहीं है। अतः विश्वसनीय बनाने के लिए इस प्रक्रिया को पारदर्शी, निष्पक्ष एवं लोकतांत्रिक बनाने की आवश्यकता है।
- शिक्षकों के शैक्षिक भ्रमण, शिक्षा एवं तकनीकी के उच्च संस्थानों का एक्सपोजर, विभिन्न राज्यों के शिक्षकों के आपसी विचार विमर्श हेतु उपयुक्त फोरम, मंच इत्यादि का प्रबन्धन अध्यापक को अभिप्रेरित करने में सहायक होगा। अभिप्रेरण में बाधा शिक्षक में पेशेवर दृष्टिकोण को विचलित कर देती है।

उपरोक्त विमर्श के आलोक में हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि 21 वीं सदी के वैश्विक परिदृश्य में शैक्षिक क्षेत्र में व्यापक बदलाव आए हैं, शैक्षिक आवश्यकताओं की विविधता बढ़ी है, शिक्षण–अधिगम के तौर तरीकों में निरंतर बदलाव हो रहे हैं, शिक्षण प्रक्रिया मे तब्दीली आ रही है तो ऐसे में शिक्षक कैसे अछूता रह सकता है? समाज में शिक्षण कार्य को पेशे के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। अध्यापन अब एक कार्य भर नहीं है वरन् एक चुनौतीपूर्ण पेशा है, इसे वही व्यक्ति संजीदगी से निर्वाह कर सकता है जिसने स्वेच्छा से इस पेशे का चयन किया हो। उसे कुछ नवाचारी, सृजनात्मक एवं सर्वोत्कृष्ट करके दिखाना है क्योंकि वह मात्र शिक्षक नहीं है वरन पेशेवर शिक्षक है।

संदर्भ : मननशील शिक्षक, 2007 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली/राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005/अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009/निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009।

(लेखक जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बागेश्वर में कार्यरत हैं।)

आप जानते ही हैं कि प्रवाह में शिक्षक साथियों के अनुभव एवं उनकी रचनाएं भी प्रकाशित की जाती हैं। शिक्षक साथी अपने लेख अथवा बच्चों की रचनाओं को प्रकाशन हेतु भेजना चाहें तो निम्न पतों पर प्रेषित करें।

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन

53, ई.सी. रोड, देहरादून–248001 उत्तराखण्ड

फोन/फैक्स : 0135 – 2659864

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन

कुड़ियाल भवन, भटवाड़ी रोड, उत्तरकाशी–249193
फोन/फैक्स : 01374–222505

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन

वार्ड नं. 3, नियर गुरुद्वारा, दिनेशपुर

उधमसिंह नगर

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन

लोअर माल रोड, कर्नाटक खोला, नियर डायट, अल्मोड़ा–263601 (उत्तराखण्ड)